Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 8 | ISSUE : 9 | SEPTEMBER 2022

समकालीन हिंदी कथाकारों की रचनाओं में परिवार चित्रण

राज कुमार [1] | डॉ. गोपीराम शर्मा [2]

[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान, 335001

[2] शोध-निर्देशक, सह आचार्य, हिंदी विभाग, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान, 335001

ABSTRACT:

परिवार पृथ्वीलोक पर स्थित ऐसी प्रशिक्षणशाला है जहां व्यक्ति को नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की शिक्षा निःशुल्क प्रदान की जाती है। समकालीन हिंदी कथाकारों ने पारिवारिक संबंधों का चित्रण व्यापक रूप से अपने-अपने उपन्यासों और कहानियों में किया है। इन कथाकारों ने परिवार में पति-पत्नी, वृद्धो के चित्रण के साथ-साथ पारिवारिक विघटन, बच्चों की समस्याएं, बुजुर्ग पीढ़ी एवं युवा पीढ़ी के मध्य वैचारिक द्वंद्व आदि का व्यापक चित्रण किया है। लेखक के समक्ष स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के बाद की सामाजिक व्यवस्था का ढांचा विद्यमान था। कुछ लेखक व्यक्तिवाद, कुछ स्वतंत्रता के पक्षधर तो कुछ संयुक्त परिवार के अस्तित्व को सामाजिक व्यवस्था के लिए जरूरी समझते हैं। इस प्रकार समकालीन कथाकार सामाजिक ताने बाने को लेकर सजग है।

KEYWORDS:

परिवार, सामाजिक व्यवस्था, भारतीय संस्कृति, परंपरा, परिवर्तन, दांपत्य संबंध, पारिवारिक तनाव, संयुक्त परिवार, मूल्यहीनता, वैमनस्य ,स्वप्नभंग, संतानोत्पत्ति, आपसी संबंध, प्रशिक्षण, झकझोर, नागरिकता, संस्था, आत्मगौरव।

मूल आलेख

किसी भी समाज की सीमा उसकी पहचान के उन स्वरूपों को समाहित किए रहती है जो वहां की जनता की चित्तवृत्ति और इसके अनुसार आचार-व्यवहार करने में सन्निहित रहती है इसमें उनका संपूर्ण जीवन दर्शन ही नहीं बल्कि निरंतर जीते चले जाने वाले छोटे-छोटे कालखंडों की व्यवहारशीलता भी जुड़ी रहती है। उसे समग्र एवं ठीक से समझने के लिए सामाजिक संरचनाओं का चिंतन एवं अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

आदिकाल से भारतीय चिंतन मूल्यवादिता, नैतिकता, आध्यात्मिक आदर्शों को संपूर्ण जीवन में समाहित कर देखने का आदि रहा है। मानवीय मूल्य एवं संस्कारों के जितने प्रबल एवं घनिष्ठ बंधन भारतीय जनमानस के हृदय में जितनी मजबूती से बंधे रहते हैं उतने अन्य देशों के जनसाधारण में नहीं।

परिवार समाज की प्राथमिक संस्थानों में से प्राचीनतम एवं सार्वभौमिक संस्था है। परिवार मानव समाज की आधारभूत इकाई का ऐसा समूह है जिसमें वृद्ध, युवा, पति-पत्नी एवं उनकी संतान निवास करती हैं। परिवार में निवास करने एवं निर्माण की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक होती है। परिवार में मनुष्य का आत्मसंरक्षण, व्यक्तित्व निर्माण, वंशसंवर्धन एवं जातीयता का विकास होता है। भारतीय संस्कृति में परिवार का अनन्य महत्व है। भारतीय परंपरा एवं संस्कृति में परिवार के विशद स्वरूप को प्रतिबिंबित करते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को प्रश्रय दिया गया है। परिवार व्यक्ति की सुरक्षा एवं व्यक्तित्व निर्माण के साथ-साथ व्यक्ति को सामाजिक जीवन हेतु तैयार करता है।

मानक हिंदी कोश के अनुसार, "परिवार (सं.) परि+ वृ (ढकना)+घत्र् अर्थात् (अ) एक ही पूर्व पुरुष के वंशज,(ब) एक घर में और विशेषतः एक कर्त्ता के अधीन या संरक्षण में रहने वाले लोग।"[1]

मैकाइवर और पेज के अनुसार, "परिवार वह समूह है जो लिंग संबंध पर आधारित है और काफी छोटा एवं इतना स्थायी है कि बच्चों की उत्पत्ति और पालन-पोषण की व्यवस्था करने योग्य है।"[2]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परिवार अनेक सदस्यों का ऐसा समूह है जो परस्पर एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित होते हैं तथा सामाजिक व्यवस्था में एक दूसरे के साथ अंत:क्रिया करते रहते हैं और सहयोग एवं सौहार्द पूर्वक निवास करते हैं। सामाजिक ढांचे की धूरी परिवार है। परिवार का प्रयोजन संतानोत्पत्ति तक सीमित नहीं है बल्कि एक सभ्य समाज का निर्माण एक आदर्श परिवार के बिना संभव नहीं है। परिवार में व्यक्ति का सर्वांगीण विकास एवं व्यक्तित्व निर्माण होता है जिससे वह सामाजिक व्यवस्था में अपना योगदान दे सके। परिवार के महत्त्व के संदर्भ में डॉ. एस. के. जायसवाल का कथन है कि "मानव को सभ्य बनाने और जीवन को सुचारू रूप से संचालित करने में परिवार का योगदान प्राचीन काल से चला आ रहा है। परिवार में सदस्यों के बीच स्नेह, ममता और करुणा के मध्य चलते हुए ही बच्चा नागरिकता का पाठ पढता है और अपने चरित्र का निर्माण करता है। इसी कारण परिवार को सामाजिक जीवन की अनिवार्य पाठशाला कहा गया है। पारिवारिक परिवेश का संपूर्ण असर बालक के जीवन में पड़ता है बच्चे में नकल की प्रवृत्ति जन्मजात होती है दूसरों को देखकर वैसा करने की आदत उसमें स्वत: पड़ जाती है यहीं से अच्छे-बुरे कार्यों की ओर उसका झुकाव हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों का यह विश्लेषण है कि आरंभिक पांच वर्ष की अवस्था तक बालक अपने व्यक्तित्व का विकास कर लेता है। इस तरह बच्चे का उत्थान परिवार से जुड़ा हुआ है।"[3] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि परिवार इस संसार का ऐसा विद्यालय है जिसमें सामाजिक संगठन एवं निर्माण का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार की प्राचीन एवं सुदृढ़ परंपरा रही है। सामाजिक दृष्टि से स्वतंत्रता के पश्चात मानवीय संबंधों में तेजी से बदलाव हुआ है। आजादी से पूर्व व्यक्ति का संघर्ष आर्थिक विपन्नता, भुखमरी एवं अभावग्रस्तता से था। लेकिन बाद की लड़ाई विचारों की है। यह एक तरह का नवीन वैचारिक द्वंद्व है। परिवार समाज की प्राथमिक संस्थानों में से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संस्था है । व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित यह सामाजिक संस्था तीव्र परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है। परिवार की अवधारणा में परिवर्तन हो रहा है। संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल एवं छोटे-छोटे परिवार स्थापित हो रहे हैं। संबंधों की सरसता एवं सौहार्द क्षीण हो रहा है। पारिवारिक संगठन का मुख्य आधार दाम्पत्य संबंधों में अलगाव, तलाक एवं बिखराव हो रहा है। समकालीन कथा साहित्य में पारिवारिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत तनाव के सजीव चित्रण साथ-साथ परिवार के बदलते स्वरूप का यथार्थ अंकन मिलता है। आधुनिकीकरण, पूंजीवाद, पाश्चात्य प्रभाव, नगरीकरण आदि के परिणामस्वरुप पूर्ववर्ती पारिवारिक अवधारणा एवं संबंधों में आमूलचूल परिवर्तन हो रहा है।

साहित्यकार समाज में रहकर इन परिवर्तनों को झेलते हुए गहन जांच-पड़ताल व चिंतन के पश्चात इसे साहित्य में स्थान देता है। शिवकुमार मिश्र, साहित्यकार की सामाजिक प्रतिबद्धता को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "साहित्य मानवीय मस्तिष्क के सबसे तेजस अंश की वाणी मानवीय क्षमता का सबसे अधिक निखरा हुआ सौंदर्यमय प्रतिफलन है और साहित्यकार भी समाज का जाग्रत प्रबुद्ध सदस्य है। वह द्रष्टा भी हो सकता है। अतीत,वर्तमान और भविष्य तीनों इकाइयों के सूत्र अपने हाथों में संभालने वाला तथा युग जीवन की धधकती हुई आग की लपटों के बीच भी, बिना आंच लगे प्रशस्त तथा उच्चतर भूमियों की ओर ले जाने वाला आदि उसकी सर्जन क्षमताएं उसकी दृष्टि, उसका मानस, वह ऊर्जा, वह बोध और वह संवेदना पास के जिसने भारत ही नहीं विश्व भर में शताब्दियों से अनेक द्रष्टा कलाकारों को

जन्म दिया है।"[4]

समकालीन हिंदी कथाकारों ने कहानी एवं उपन्यासों में परिवार का चित्रण विविध रूपों एवं संदर्भों में किया है। प्राचीनकाल से संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय समाज का आधार रही है। समकालीन कथाकारों ने भारत की इस गौरवशाली एवं समृद्ध पारिवारिक व्यवस्था को अपने साहित्य के माध्यम से उकेरा है। संयुक्त परिवार में अल्पायु में ही यदि बच्चों के माता-पिता की मृत्यु हो जाए तो परिवार के अन्य सदस्यों का संरक्षण एवं स्नेह उन बच्चों को मिलता है। इसका संकेत हमें शशिप्रभा शास्त्री की 'दो कहानियों के बीच', सूर्यबाला की 'थाली भर चांद', चित्रा मुद्गल की 'बावजूद इसके' कृष्णा सोबती की 'दादी अम्मा' राजी सेठ की 'अंधे मोड़ से आगे' मालती जोशी की 'स्नेहबंध', 'महकते रिश्ते' आदि कहानियों में मिलता है। संयुक्त परिवार में आपसी रिश्ते इतने गहरे एवं मजबूत होते हैं कि कभी-कभी उनमें छोटी-मोटी दरार आने के बावजूद भी उन रिश्तों को निभाना आवश्यक हो जाता है। शिवानी की कहानी 'करिए छिमा' में इसका चित्रण मिलता है- "श्रीधर ने साधारण गृह में जन्म लिया था। पिता थे एक शिव मंदिर के पुजारी और माता को उसके जन्म के मूल नक्षत्र ने उसी दिन डस लिया था। आठ ही वर्ष का था कि पिता का साया उठ गया, लोक लाज के भय से ताऊ ने उसे अपने पास बुला लिया।"[5]

संयुक्त परिवार में आपसी संबंध विश्वास की डोर द्वारा मजबूती से बंधे रहते हैं। परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने उत्तरदायित्व का पालन पूर्ण सजगता से करने का प्रयास करता है। ममता कालिया की 'इक्कीसवीं सदी' इसी संदर्भ को अभिव्यक्त करती हुई कहानी है। 'रेखा' पारिवारिक मूल्यों के महत्त्व को भली भांति समझती है। उसे ससुराल का परिवार इसलिए पसंद था क्योंकि वहां मूल्यों का निर्वहन होता था। "ससुराल के स्तर पर रेखा को कष्ट नहीं था, चारों तरफ मूल्यहीनता के बीच भी उसके परिवार में कुछ मूलभूत मूल्य सुरक्षित रखे हुए थे, यह बात सबके अंदर कूट-कूटकर भरी हुई थी कि सारी समस्याओं के बीच भी रिश्तों को यथायोग्य आदर और स्नेह मिलते रहना चाहिए। एक आदर्श औसत परिवार था वह, जो संयुक्त होते हुए भी हर सदस्य की आजादी की कद्र करता था।"[6]

मजबूत एवं खुशहाल परिवार उन्नत राष्ट्र का निर्माण करता है। शशिप्रभा शास्त्री की कहानी 'छोटे-छोटे महायुद्ध' इसी बात को चरितार्थ करती है- "एक एक व्यक्ति की इकाई मिलकर जन्म देती है। परिवार को, परिवारों का समूह जन्म देता है समाज को और समाज निर्माण करते हैं नगर, देश और फिर विश्व।"[7]

गोविंद मिश्र के उपन्यास 'पांच आंगनों वाला घर'[8] में नौकरीपेशा स्त्री 'रंभो' संयुक्त परिवार को अपनी स्वतंत्रता में बाधक मानकर एकाकी परिवार चाहती है, परिणामस्वरुप संयुक्त परिवार विखंडित हो जाता है। 'कोहरे में कैद रंग' उपन्यास में पारिवारिक मूल्यों का हवाला देते हुए गोविंद मिश्र लिखते हैं- "गलत है वे लोग जो रिश्ते-नातों को परिवार तक ही सीमित रखते हैं। आसपास लोग आपका कुछ भी बनने को सहज तैयार रहते हैं बराबर! हमारी तंगदिली ही उन्हें हमारे वृत्त में आने से रोकती है।"[9]

कभी-कभी परिवार में आर्थिक रूप से कमजोर सदस्य घृणित दृष्टि से देखा जाता है। मन्नू भंडारी की 'सजा' नामक कहानी में आशा और उसका भाई मनु चाचा के यहां निवास करते हैं। चाची का व्यवहार संतोषजनक नहीं है। वह आशा के समक्ष जानबूझकर कहती है- "अब भाई साहब को लिख दो कि पचास रुपए नहीं भेज सकेंगे, इस महंगाई के जमाने में दो का पालना बहुत भारी पड़ रहा, फिर हमारे भी तो बच्चे हैं। कौन यहां खान गडी है?"[10]

नासिरा शर्मा के 'शाल्मली' उपन्यास में नरेश और शाल्मली का शादीशुदा जीवन वैचारिक मतभेद के कारण कष्टप्रद हो जाता है। उपन्यास के संवाद से स्पष्ट है- "शाल्मली अभिव्यक्ति को जीवन मानती थी और नरेश भावों को छिपाने में निपुण था। शाल्मली स्वयं को लताड़ती और समझाती कि उसका जीवनसाथी अगर ऐसी प्रकृति का है, तो उससे इतनी ढेर सारी अपेक्षाएं करना नादानी नहीं है क्या ?"[11]

मालती जोशी के उपन्यास 'सहचारिणी' में कथा नायिका और उसके पति के मध्य अन्य व्यक्ति, सीमा को लेकर वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है तथा दांपत्य संबंधों में तनाव पैदा हो जाता है। कथानायक कहता है कि- "उससे फर्क क्या पड़ता था। क्या इससे पहले कभी बताया नहीं। पर तुम्हारे पास देने को है क्या, सिर्फ उपदेश, उलाहने। जबकि सीमा धीरज देती है, सलाह देती है, सांत्वना देती है। तुम्हारे सामने बैठकर लगता है, मैं सबसे निकृष्ट व्यक्ति हूं, जबकि सीमा के साथ दो घड़ी भी रह लूं, तो एक आत्मगौरव की अनुभूति होती है। अपनी ही नजरों में ऊंचा उठ जाता हूं मैं, क्योंकि उसकी आंखों में होती है श्रद्धा, आस्था, आदर विश्वास।[12]

इसी प्रकार 'उफान' नामक कहानी में मालती जोशी द्वारा आपसी ईर्ष्याभाव के कारण बदलते परिवार का चित्रण किया गया है। हरीश कॉलेज में पढ़ने के लिए पहली बार शहर गया तो उसकी मां चिंता के कारण शारीरिक रूप से अत्यधिक कमजोर हो गई। जब वह छुट्टियों में घर आता है तो उसके हृष्ट-पुष्ट शरीर को देखकर उसकी मां को प्रसन्नता होती है लेकिन उसकी छोटी भाभी ईर्ष्या भाव से कहती है- "और लोग तो घर छोड़कर दुबला जाते हैं पर इधर देखो। अरे हम तो पराए हैं पर मां की तो याद आई होती।"[13]

निष्कर्ष

समकालीन कथाकार आधुनिक दौर की पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था के प्रति सजग हैं। वे पारिवारिक मूल्यों को अनेक रूपों में प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में मूल्य प्रतिपादन की दृष्टि से समाज तथा परिवार के व्यापक संदर्भों को प्रस्तुत किया है।

समकालीन कहानी में नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को अनदेखा कर रही है जिसके मूल में देखें तो बदलते सामाजिक परिवेश में जीवन के मूल्यों का क्षरण है। विकास की तेज रफ्तार इन पारिवारिक मूल्यों को झकझोर रही हैं। पुरातन मूल्य की जड़ें हिल रही हैं जिसके नतीजे में समकालीन समाज का पारिवारिक बिंब कहीं भीतर से विघटित हो रहा है।

समकालीन कथाकार दांपत्य संबंध, वृद्धों का अकेलापन, उनके प्रति उपेक्षा भाव, बच्चों की समस्याएं, संयुक्त परिवार का विघटन, पारिवारिक संबंधों में विश्वास एवं सौहार्द का निरंतर होता अभाव, ईर्ष्या भाव, आपसी संबंधों की निकटता एवं गहराई से चिंतन करके कहानी एवं उपन्यासों के माध्यम से इसे चित्रित कर रहे हैं।

कह सकते हैं कि वर्तमान समय में परिवारों में बहुत बड़े परिवर्तन लक्षित हो रहे हैं। ये परिवर्तन केवल आकार संबंधी ही नहीं है बल्कि पति-पत्नी संबंध, पिता-पुत्र संबंध और आपसी संबंधों में गंभीर बदलाव देखने को मिल रहे हैं। इसके पीछे स्त्री स्वातंत्र्य, वैयक्तिक अस्मिता, बदलते मूल्य, आर्थिक कारणों सहित मनोवैज्ञानिक एवं अन्य कई कारण समाहित हैं। परिवारों पर पड़ने वाले प्रभावों से जो नुकसान होने वाला है, उसको समकालीन कथाकार महसूस कर रहा है तथा उन कारणों को चिह्नित भी कर रहा है। कह सकते हैं कि परिवार चित्रण जैसे विषय को अपनी रचनाओं में स्थान देकर तथा समाज का ध्यान केंद्रित करने में समकालीन कथाकार अपनी पुरजोर भूमिका निभाने की ओर कदम बढ़ा रहा है।

REFERENCES

1. हरिदत्त वेदालंकार - हिंदू परिवार मीमांसा, बंगाल हिंदी मंडल, कलकत्ता, सन् 1954, पृष्ठ 01

2. मैकाइवर और पेज - सोसायटी, मैकमिलन एंड कंपनी, लंदन, सन् 1965, पृष्ठ 228

3. डॉ. एस.के.जायसवाल - प्राचीन भारत का सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ, प्रथम संस्करण- 2013, पृष्ठ 165

4. डॉ. शिवकुमार मिश्र - आधुनिक कविता और युग दृष्टि, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, जनवरी 2012, पृष्ठ 45

5. शिवानी - करिए छिमा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2007 पृष्ठ 198

6. ममता कालिया - इक्कीसवीं सदी, सारिका, जनवरी 1987, पृष्ठ 21

7. शशिप्रभा शास्त्री - छोटे-छोटे महायुद्ध, सारिका, संयुक्त विशेषांक, जनवरी 1986, पृष्ठ 13

8. गोविंद मिश्र - पांच आंगनों वाला घर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2019 से उद्धृत।

9. गोविंद मिश्र - कोहरे में कैद रंग, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ 28

10. मन्नू भंडारी - सजा, मेरी प्रिय कहानियां, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 115

11. नासिरा शर्मा - शाल्मली, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 42

12. मालती जोशी - सहचारिणी, संपादक डॉ. वीरश्री वशिष्ठजी आर्य, मालती जोशी के कथा-साहित्य में पारिवारिक तनाव, अभय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ 142

13. मालती जोशी - तूफान, संपादक डॉ. वीरश्री वशिष्ठजी आर्य, मालती जोशी के कथा-साहित्य में पारिवारिक तनाव, अभय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ 182